पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार गाथा ३१, महावीर निर्वाण दिवस
तारीख २२-१०-१९८७, प्रवचन ३१

आज का मंगल दिन है भगवान महावीर का निर्वाण दिन है; (भगवान) आज मोक्ष पधारे। ऐसे तो भगवान महावीर का वियोग होने से शोक का दिन है, मगर परमात्मा सिद्ध हो गए तो खुशी का दिन भी है। किसी जीव की मुक्ति हो तो तो खुशी की बात है ना। और दूसरा क्या है कि इस चौबीसी में अंतिम तीर्थंकर चरम शरीरी भगवान महावीर - वर्धमान स्वामी हो गए (हैं)। उनका ये शासन चलता है। २५०० साल से उनके बाद उनका ही शासन चलता है। तो अपने ऊपर तीर्थंकर का उपकार, भगवान महावीर का उपकार है। Last (आखिर) में उनकी वाणी, दिव्यध्वनि मिली, गौतम गणधर ने झेली और उनकी परंपरा में जो आचार्य हुए, उन्होंने उसके द्वारा आत्मा का अनुभव करके ये शास्त्र लिखे। तो ये शास्त्र, जिनवाणी की परंपरा आज तक चालू है। इसलिए हम पर भगवान महावीर का अनंत उपकार है, जिन्होंने हमारे स्वरूप को बता दिया, कि तेरा स्वरूप क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है, हम पहचानते नहीं थे। भगवान महावीर ने बताया, तो भगवान महावीर का बड़ा उपकार है। आज उनका निर्वाण दिन है और गौतम गणधर को आज केवलज्ञान हुआ। इसका थोड़ा इतिहास मैं पढ़ता हूँ, भगवान महावीर के लिए।

(तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ ७३)

इन्द्रभूति गौतम के अतिरिक्त उनके दस गणधर और थे। बनाव क्या बन गया? कि भगवान महावीर को केवलज्ञान हुआ, ६६ दिन तक वाणी नहीं खिरी, और ये कोई अचंभे-अचरज की बात (है), हुंडावसर्पिणी पंचमकाल में (ऐसा) हो गया, क्योंकि (सामान्यतः) ऐसा बनाव बनता नहीं है। जब केवलज्ञान होता है तो वाणी खिरती (ही) है और गणधर भी हाजिर (होते ही) हैं।

६६ दिन तक वाणी नहीं खिरी तो इन्द्र महाराज का सिंहासन चलायमान हुआ कि ये क्या है? अवधिज्ञान से देखा तो (पाया कि) गणधर सभा में (उपस्थित) नहीं थे, इसलिए वाणी नहीं खिरती थी - ऐसा योगानुयोग बनता है। वो तो वीतराग परमात्मा हो गए। वो (गणधर) आवें तो मैं सुनाऊँ और वो न आवें तो मैं न सुनाऊँ, ऐसी दशा - इच्छा तो (उनको) है नहीं। इच्छा का तो अभाव हो गया है, परिपूर्ण वीतराग दशा हो गई; ज्ञाता-दृष्टा हैं। मगर वाणी नहीं खिरी तो इन्द्र महाराज गौतम गणधर के पास गए। वो वेदांती थे उस टाइम। जैनमति नहीं (थे, बल्कि) गृहीत मिथ्यादृष्टि थे। तो उनको वेदान्त की श्रद्धा थी, जैन की श्रद्धा नहीं थी। मगर जो कोई धर्म का बड़ा होता है उसको सभी दर्शन का अध्ययन भी होता है। उनको जैनदर्शन का अध्ययन तो था (और) थोड़ी उसमें शंका भी थी।

तो योगानुयोग इन्द्र महाराज आए। उन्होंने कहा कि हमको नव तत्त्व का स्वरूप बताओ। तो (पूछा) कि तुम कौन हो? एक हमारे गुरु हैं, उनका मैं शिष्य हूँ - महावीर का। तो उन्होंने कहा तुम्हारे साथ चर्चा नहीं करनी। क्योंकि गौतम तो जानते ही नहीं थे (कि) नव तत्त्व का क्या स्वरूप है। (तो ऐसा

कहा कि) तेरे गुरु के पास चल, वहाँ उनके साथ मैं चर्चा करूंगा (और) तेरे को जवाब दूँगा। उसको (इन्द्र को) इतना ही काम था। चलो! तो चले और भगवान महावीर के समवशरण में जहाँ आए, आहाहा! अभिमान गल गया कि मैं कुछ जानता नहीं हूँ। अभिमान गलने लगा, परिणति में निर्मलता थोड़ी अपेक्षित आने लगी, और दिव्यध्वनी छूटी, उस ही समय सम्यग्दर्शन हुआ। अंतर्मुहूर्त में तो मुनि-दीक्षा उन्होंने धारण की, गणधर पद हो गया, चार ज्ञान प्रगट हो गए। कुमति-कुश्रुत था, उसका व्यय हो गया, अज्ञान का व्यय हो गया। सुमति, सुश्रुत और सुअवधि और मनःपर्ययज्ञान, (ऐसे) चार ज्ञान प्रगट हो गए। ऐसे गौतम गणधर मुख्य थे।

११ गणधर थे। भगवान महावीर के गणधर ११ थे। अभी ऐसा सुना है कि बीस तीर्थंकर हैं, अभी विहरमान सीमंधर भगवान आदि (हैं)। भरतक्षेत्र के और धातकी (क्षेत्र) और पुष्कर (क्षेत्र) मिलकर बीस तीर्थंकर विहरमान हैं। उनके ८४-८४, एक-एक के ८४ गणधर हैं। अभी विद्यमान हैं। ऐसे भगवान महावीर के ११ गणधर थे। उनमें गौतम गणधर प्रमुख थे।

इन्द्रभूति गौतम के अतिरिक्त उनके दस गणधर और थे। जिनके नाम इस प्रकार हैं -

१. अग्निभूति २. वायुभूति ३. शुचिदत्त ४. सुधर्म ५. मानुष्य ६. मौर्यपुत्र ७. अकम्पन ८. अचल ९. मेदार्य और १०. प्रयास।

श्रावक शिष्यों में मगध सम्राट महाराजा श्रेणिक बिम्बसार प्रमुख थे - जो इस आनेवाली चौबीसी में अपने तीन लोक के नाथ, तीर्थंकर होनेवाले हैं। (महाराजा श्रेणिक) पहले तीर्थंकर हैं आनेवाली चौबीसी में, आनेवाली चौबीसी में। **उनके कर्मठ शिष्य-परिवार में चौदह हजार साधु।** भगवान महावीर के परिवार में १४००० साधु थे। **छत्तीस हजार आर्यिकाएँ** अर्जिका **एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएँ थीं। वैसे उनके अनुयायियों की संख्या तो अगणित थी।** वो तो अगणित थे।

अंत में विहार करते हुए भगवान महावीर पावापुर पहुँचे। वहाँ उन्होंने विहार और उपदेश से विराम ले लिया।

क्या हुआ? जब तीर्थंकर भगवान दीक्षा धारण करते हैं, और वन में चले जाते हैं अपनी साधना (करने) के लिए ...। तो ऐसा आगम का पाठ है, कि जो तीर्थंकर प्रभु चरम शरीरी हैं; चरम शरीरी यानि अंतिम शरीर, बाद में शरीर मिलनेवाला नहीं है; अशरीरी हो जायेंगे। तो दीक्षा लेकर जंगल में जाते हैं। शुरू से उनके पास तीन ज्ञान तो थे, जन्म से मति-श्रुत-अवधिज्ञान तो था, और दीक्षा लेने के समय मनःपर्यय ज्ञान भी प्रगट हो जाता है। बाद में वो ध्यान में मग्न होते हैं।

तो किसका ध्यान करते हैं? भगवान महावीर के जीव ने किसका ध्यान किया कि जिसके फल में (उनको) केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई? ऐसा काम क्या किया उन्होंने कि केवलज्ञान प्रगट हो गया? और किसका ध्यान किया उन्होंने? इसका आगम में एक पाठ है परमात्मप्रकाश में, योगीन्दुदेव का बहुत पुराना (शास्त्र है)। (योगीन्दुदेव) भावलिंगी दिगम्बर संत (थे), अतीन्द्रिय आनंद का भोजन करने वाले। मुनिराज अतीन्द्रिय आनंद का भोजन करते हैं। आहाहा! निरंतर आत्मिक आनंद का भोजन करते हैं, शुद्धोपयोग में रहते हैं बार-बार। ऐसे मुनिराज जब भगवान महावीर बने, तब उन्होंने 'यह

(मेरा) आत्मा है'। सबके आत्मा की बात चलती है। ये आत्मा है, वो पर्यायार्थिकनय से देखो तो, पर्याय धर्म से देखो तो, उत्पाद-व्यय से सहित है, परिणाम से सहित है। ये आत्मा है, वो व्यवहारनय से देखो तो, पर्यायार्थिकनय से देखो तो, पर्याय धर्म की ओर जाकर देखो तो, ये आत्मा पर्याय से सहित है, परिणाम से सहित है। उत्पाद-व्यय से सहित होने पर भी जो ध्रुव परमात्मा अंदर विराजमान है, वो उत्पाद-व्यय से रहित है। ऐसे उत्पाद-व्यय से, परिणाम से भिन्न, परिणाम से रहित - ऐसे अपने ध्रुव परमात्मा का ध्यान किया। भगवान महावीर ने साधक अवस्था में, साधु अवस्था में अपने शुद्धात्मा का ध्यान किया। उस ध्यान का फल शुक्लध्यान आया। धर्मध्यान के बाद शुक्लध्यान आता है, और शुक्लध्यान आता है तो उसमें लीन हो जाता है आत्मा, एकाग्र हो जाता है। **एकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानम्** (मोक्षशास्त्र अधिकार ९ सूत्र २७) ध्यान की ऐसी अवस्था है कि उसमें कोई संकल्प-विकल्प उत्पन्न होता नहीं है। चिंता का अभाव हो जाता है।

मैं ध्यान करूँ ऐसा विकल्प होता नहीं है। मैं ध्यान करनेवाला हूँ और मेरा आत्मा ध्येय है - ऐसा भेद निर्विकल्पध्यान में उठता नहीं है। ऐसी स्थिति जब जम गई, अंदर में जम गये तो (वो) चारित्र की उग्र अवस्था है। आत्मा में लीन होना उसका नाम चारित्र है। वे लीन हो गए तो केवलज्ञान का भड़का हो गया। ऐसी स्थिति भगवान महावीर की हुई थी।

अंत में विहार करते हुए भगवान महावीर पावापुर पहुँचे। वहाँ उन्होंने विहार और उपदेश से विराम ले, दिव्यध्वनि बंद हो गई। Last (अंत) में दिव्यध्वनि बंद हो जाती है जब मोक्ष का काल पकता है तब। **योग-निरोधकर..।**

धन्य-तेरस के दिन वाणी बंद हो गई थी और आज निर्वाण हो गया। **योग-निरोधकर** मन-वचन-काय का जो योग है, कंपन और विकल्प, उसका निरोध हो जाता है। **शुक्लध्यान की चरमावस्था में** शुक्लध्यान की शुरुआत होती है और शुक्लध्यान का अंत समय आता है (तब) उसका व्यय होकर केवलज्ञान (होता है)। छद्मस्थ (अवस्था) है, शुक्लध्यान छद्मस्थ की अवस्था है, साधु की अवस्था है और केवलज्ञान परमात्मा की अवस्था है। शुक्लध्यान अंतरात्मा में होता है और केवलज्ञान परमात्मा में प्रगट हो जाता है।

शुक्लध्यान की चरमावस्था में आरूढ़ हो, कर्मों के अवशेष चार अघातिया कर्मों का भी अभाव कर जब अरिहंत होते हैं तब घाति कर्मों का अभाव होता है और सिद्ध होते हैं तब बाकी के चार कर्मों का अभाव हो जाता है। **अन्तिम देह का पूर्णत: परित्याग कर** ये देह बिखर जाती है। जैसे कपूर की गोटी है ना, कपूर की गोटी के परमाणु अलग हो जाते हैं, ऐसे ही ये परमाणु अपनेआप बिखर जाते हैं। और **निर्वाण पद प्राप्त किया।**

यह घटना आज से ठीक पच्चीससौ वर्ष पूर्व की है। कार्तिक की श्याम अमावस्या थी, रात्रि घने अंधकार में डूबी थी। घने अंधकार में। **प्रभात होने में कुछ ही समय शेष था। भुवनभास्कर की प्रथम किरण गिरि-शिखरों पर भी प्रस्फुटित न होने पाई थी** सूर्य उगा नहीं था **कि वीर प्रभु का निर्वाण हो गया।** प्रभु की निर्वाण की पूजा आज हमने सुबह में की थी, सबने।

प्रभु के निर्वाण का समाचार पा देवों ने आकर महान उत्सव किया, जिसे निर्वाणोत्सव

कहते हैं। पंच कल्याणक हैं ना, उसमें एक मोक्ष कल्याणक है। **पावानगरी प्रकाश से जगमगा गई। जिसप्रकार काली नागिन किसी को डसकर उलट जाती है तो उसका काला भाग नीचे दब जाता है।** सर्प का ऐसा है (कि) किसी को काटता है ना, जहरीला नाग, तो ऐसे उलट जाता है।

उसका काला भाग नीचे दब जाता है और नीचे का शुभ्र भाग ऊपर आ जाता है। सफेद भाग ऊपर आ जाता है। **उसीप्रकार मानो काली रात्रि रूपी नागिन ने वीर प्रभु को हमसे छीन लिया है, डस लिया है; अतः मानो वही उलटकर प्रकाशमयी हो गई है।**

समझ में नहीं आता - इस दीपावली को प्रकाश का पर्व कहें या अंधकार का, इसने हमारे वीर प्रभु को हम से छीन लिया है। पर उन्हें निर्वाण प्राप्त हो गया; अतः लोग शोकमग्न होकर भी हर्षित थे। एक बाजू शोक और दूसरे बाजू हर्ष। एक आत्मा की मुक्ति हो गई वो हर्ष का कारण है (परंतु) अपने परमात्मा का वियोग हो गया तो दुख भी होता है।

तीर्थंकर भगवान महावीर का प्रातः निर्वाण हुआ और उसी दिन सायंकाल उनके प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम गणधर को पूर्णज्ञान (केवलज्ञान) की प्राप्ति हुई। इस कारण यह दिन द्विगुणित महिमावंत हो गया। भगवान महावीर के वियोग से दुःखी धर्म-प्रजा को केवली गौतम को पा कुछ आश्वासन मिला। शोकाकुल जनता का शोक कुछ कम हुआ। गणधर भगवान केवली हो गए, इसलिए।

दीपावली का महान पर्व भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव एवं गौतम गणधर के केवलज्ञान-कल्याणक के रूप में मनाया जाता है। भगवान महावीर के निर्वाण दिन से एक संवत् भी चला जिसे वीर निर्वाण संवत् कहते हैं, जो आज भी जैनियों में अत्यधिक प्रचलित है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि तीर्थंकर भगवान महावीर के वर्तमान भव में उतनी विविधता और उतार चढ़ाव नहीं हैं, जितने कि उनके पूर्व भवों में पाए जाते हैं। उनके वर्तमान भव में उनके आध्यात्मिक जीवन का उत्तरोत्तर क्रमिक विकास स्पष्ट परिलक्षित होता है।

जन्म से आत्मज्ञानी बालक वर्द्धमान को हम बचपने से ही धीर-गंभीर और आत्मनिष्ठ पाते हैं। राज-काज आदि लौकिक कार्यों में उनकी रुचि ही न थी। बाह्य जगत से एकदम कटे हुए से राजकुमार वर्धमान अपने अन्तर्जगत में ही मग्न रहते थे। न उन्हें वैभव से लगाव था, न विषय- भोगों का ही चाव।

यद्यपि वे तीस वर्ष तक घर में रहे, पर रहे न रहे बराबर। उनका मन घर में कभी लगा ही नहीं। यौवन उनके भी आया था, पर उनके जीवन में यौवनायें न आ सकीं। उनके जीवन में यौवन नहीं था। शरीर में यौवन था, मन में यौवन नहीं (था)। **क्योंकि उनमें यौनेषणा ही न थी। उनको यौवन से कोई आकर्षण न था, तभी तो तीसवर्षीय भरे यौवन में विरागी बन** गए। आहाहा! **वीतरागी बनने वन को चल पड़े तथा मौन हो गये। वे गए तो गये फिर लौटे ही नहीं, मौन हुए तो हुये, फिर किसी से तब तक बोले ही नहीं, जब तक कि अपना प्राप्तव्य न पा लिया,** केवलज्ञान न पा लिया।

जब वे पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ हो गये तब उनकी वाणी प्रस्फुटित हुई। वीर हिमाचल

से पावन जिनवाणी गंगा प्रवाहित हुई तो तीस वर्ष तक बहती रही। तीस वर्ष तक ओमकार ध्वनि छूटी। समवशरण की रचना देवों ने आकार की, इत्यादि। **गौतम गणधर आदि अनेकों ने उसमें निमज्जन कर, निमग्न हो, अपूर्व शान्ति और आनन्द प्राप्त किया।**

सर्व हितकारी उनका हितोपदेश एक तीर्थ बन गया। वे स्वयं तो तिरे ही, उनके पावन उपदेश से लाखों और भी भव-सागर से पार उतरे, उतरने का मार्ग पा गये। सर्वोदय तीर्थ का प्रचार व प्रसार कर वे अपने तीर्थंकर होने को सार्थक कर गये।

जब वे गये तब अमावस्या की रात्रि भी प्रकाशमय हो गई और २५०० वर्षों से आज तक लगातार एक वही कार्तिकी अमावस्या-काली होकर भी जगमगाती है, दीये जलाते हैं ना सब। **प्रकाशमय हो जाती है। उस दिन दीपों की आवलियाँ जगमगा उठती हैं; अतः यह महान पर्व दीपावली के नाम से विख्यात है।**

दीपावली अंधकार में प्रकाश का पर्व आज **है**, दीपावली का।

ऐसे जो तीर्थंकर भगवान ने, जो केवलज्ञान-मोक्ष प्राप्त किया, उनकी वाणी में ऐसा आया कि मैंने इस अरिहंत और सिद्ध दशा की प्राप्ति का मैंने क्या कार्य किया? क्या उपाय किया? तो उनकी वाणी में वो सब सात तत्त्व, नव पदार्थ का स्वरूप, छह द्रव्य का स्वरूप वाणी में आ गया। उसके अंदर एक ऐसा अलौकिक मंत्र भी आ गया, कि ये तेरा जो आत्मा है, और देह दिखती है, ये देह तेरी नहीं है। देह से तेरा आत्मा भिन्न है, तू तो ज्ञाता-दृष्टा ज्ञानमयी आत्मा है; ये देह तेरी नहीं है। वो आठ कर्म का संयोग ज्ञानावरण आदि का है, वो भी जड़ है, पर है, (वो) तेरी चीज नहीं है। और उसके लक्ष से होनेवाले पुण्य-पाप के जो परिणाम, पुण्य और पाप के जो परिणाम, शुभ और अशुभ का जो राग होता है, वो भी तेरी चीज नहीं है। और इससे एक सूक्ष्म बात कही कि तेरे पास जो ज्ञान है, प्रतिमा का दर्शन करने का ज्ञान, शास्त्र सुनने का जो ज्ञान है तेरे पास, वो ज्ञान तेरा नहीं है। वो ज्ञान ही नहीं है, सचमुच (तो वो) ज्ञेय है।

ऐसी एक सूक्ष्म बात ३१ वीं गाथा में आचार्य भगवान ने की है जो जगत के कम जीव जानते हैं उस बात (को)। देह से जुदा, कर्म से जुदा, राग से - आस्रव से जुदा, वहाँ तक तो कई जीवों ने वो बात जानी (है)। मगर पर को जाननेवाला ये जो भावेन्द्रिय, इंद्रियज्ञान, खंडज्ञान है, उससे आत्मा भिन्न है। आहाहा! पाँच इंद्रिय का जो ज्ञान है, जानने की क्रिया होती है, उस क्रिया से आत्मा भिन्न है। आत्मा अंदर में अतीन्द्रियज्ञानमयी परमात्मा विराजमान है। अतीन्द्रियज्ञानमयी आत्मा से ये इंद्रियज्ञान जुदा है। इंद्रियज्ञान से जो तू जानता है और मानता है कि मैंने जाना, वो संसार है। ऐसी कोई सूक्ष्म बात, जगत के कान पर आती नहीं है, मगर इस समयसार में आ गई है। और समयसार का अध्ययन जो करता है उसको वो मालूम हो जाती है। उससे भेदज्ञान करके आत्मानुभव कर लेता है।

ये जो आँख है ना चक्षु, ये चक्षु है ना, वो तो पुद्गल परमाणु की बनी हुई है। वो तो जड़ है, अचेतन है। आँख से कोई देखता नहीं है मगर आँख के अंदर एक क्षयोपशम-उघाड़ ज्ञान है, जिसको भावेन्द्रिय (कहते हैं), शास्त्रीय भाषा है। ये द्रव्येन्द्रिय है, और एक उघाड़ अंदर में जानन-क्रिया होती है- पराश्रित जानन-क्रिया, उसका नाम भावेन्द्रिय है। तो आचार्य भगवान फरमाते हैं कि ये चक्षु जो

शरीर का spare part (अंग) है, वो तो तेरी चीज नहीं है, वो तो जड़ (है), उसका मालिक जड़ है। और अंदर में जो जानने की क्रिया होती है (कि) ये चंद्रप्रभु भगवान विराजमान हैं, उनको जानने की जो क्रिया होती है, उस जानने की क्रिया से आत्मा जुदा है। (उन) भगवान को जाननेवाला जुदा और इस भगवान को जाननेवाला ज्ञान जुदा है। इन परमात्मा को जाननेवाला ज्ञान जुदा, भावेन्द्रिय - खंडज्ञान, और अपना अंदर भगवान दूसरा विराजमान है। आहाहा!

दो भगवान हैं? कि हाँ! दो हैं। एक व्यवहार भगवान पर हैं, वो परमात्मा हैं वो पर हैं, और मैं शुद्धात्मा स्व हूँ। भजन में आया था कि तुम भी समयसार, मैं भी समयसार और सब आत्मा भी समयसार। पूजा में भी ऐसा आया (था)। आहाहा! समयसार यानि शुद्धात्मा। ये आत्मा स्त्री नहीं है, पुरुष नहीं है। आहाहा! ये आत्मा मिथ्यादृष्टि, रागी, मोही नहीं है। ये आत्मा कर्म से बंधनेवाला नहीं है, कर्म संबंधवाला नहीं है। इससे जुदा, अखंडानंद, चिदानंद आत्मा अंदर अतीन्द्रियज्ञानमयी आत्मा प्रभु-विभु अंदर विराजमान है, उसको देख। उसको जाननेवाला ज्ञान जुदा और पर को जाननेवाला ज्ञान जुदा। दो (हैं), एक का नाम ज्ञान है और पर को जाननेवाले ज्ञान का नाम ज्ञेय है; ज्ञान नहीं है ज्ञेय है।

जैसे ये (माइक) ज्ञेय है ना, ये (माइक) ज्ञेय है, ये ज्ञान में प्रतिभासित होता है। ऐसे ही जो इंद्रियज्ञान है; (चंद्रप्रभु) भगवान तो ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं वो (चंद्रप्रभु) भगवान तो जुदा हैं। मगर भगवान परमात्मा, **जिन-प्रतिमा जिन सारखी** (नाटक समयसार, १४ गुणस्थान अधिकार, श्लोक १), जिनेन्द्र भगवान की जो प्रतिमा है वो तो अपने शुद्धात्मा से अलग है, जुदी है। उसके लक्ष से तो राग होता है, धर्म नहीं होता है (बल्कि) शुभ राग होता है, पुण्य बँधता है। मगर उस प्रतिमा को जाननेवाला जो ज्ञान है, उस ज्ञान से भी भगवान ज्ञान भिन्न है। ज्ञान से ज्ञान का भेदज्ञान, यानि इंद्रियज्ञान से अतीन्द्रियज्ञान जुदा है। जगत के जीवों को ये बात कान पर आई नहीं है। आहाहा! देशनालब्धि सुननेवाला ज्ञान मेरा नहीं है। जो देशनालब्धि सुनता है ना, वो कान मेरा नहीं है। ये (जो) कान है, (ये) मेरा नहीं है। और सुना कि तू आत्मा है, ऐसा शब्द आया, वो ज्ञान में सुना-जाना; जाना- उस जाननेवाले ज्ञान की जो अवस्था है- इंद्रियज्ञान, वो मेरा नहीं है। मैंने नहीं जाना। दिव्यध्वनि (को) मैं नहीं जानता हूँ। मैं तो जाननहार को जानता हूँ। अलग बात है ये बात!

मैं तो ज्ञानानन्द आत्मा हूँ, और जो ज्ञान अपने को प्रसिद्ध करे वो ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। और अपने को छोड़कर पर को प्रसिद्ध करे, वहाँ रुके, वो तो अज्ञान है (और) संसार का कारण है। पुण्य-पाप तो संसार का कारण है ही। पुण्य से तो धर्म तीन काल में होता नहीं है, वो तो बंध का कारण है। Pure (सर्वथा) बंध का कारण है; वो मोक्ष का कारण नहीं है। वो तो अलग रही बात, मगर इससे सूक्ष्म कि पुण्य-पाप के परिणाम को जाननेवाला, क्रोध-मान-माया-लोभ को जाननेवाला जो ज्ञान है, वो आत्मा का ज्ञान नहीं है। वो क्रोध को जाननेवाला ज्ञान क्रोध का हो गया। आहाहा! वो क्रोध ही है। क्रोध भी क्रोध और क्रोध को जाननेवाला ज्ञान भी क्रोध, उसमें एकत्व हो गया। आहाहा! इस क्रोध से जुदा, और क्रोध को जाननेवाला जो इंद्रियज्ञान, उससे आत्मा जुदा है। आहाहा! अंदर में आत्मा विराजमान है। अवधू अंदर में, गुफा में आत्मा है। आहाहा!

ऐसे २००० साल पहले दिगम्बर संत हो गए, कुंदकुंदाचार्य, समर्थ (आचार्य), जिनका नाम

तीसरा है।

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।

समर्थ आचार्य हो गए उन्होंने ८४ पाहुड लिखे। मगर थोड़े पाहुड रह गए, बाकी के नष्ट हो गए। ऐसे समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड आदि (रह गए)। आहाहा! उनकी एक बारह भावना की पुस्तक है, अनुप्रेक्षा। वो अलौकिक-आध्यात्मिक है, **वारसाणुवेक्खा - द्वादशानुप्रेक्षा** नाम की एक पुस्तक है। आहाहा! जैसे कार्तिकेयानुप्रेक्षा में है बारह भावना, ऐसे ये कुंदकुंद भगवान ने बारह भवना की एक पुस्तक बनाई है। आहाहा! अनुप्रेक्षा।

ऐसे आचार्य भगवान ने करुणा करके एक अंदर की बात बताई (जो) जगत को मालूम नहीं है। जगत इस शास्त्रज्ञान को ज्ञान जानता है। शास्त्र ज्ञान, ज्ञान नहीं है। शास्त्र के सन्मुख होनेवाला ज्ञान वो ज्ञेय है, ज्ञान नहीं है। आहाहा! और अंदर में, मन के अंदर विचार चलता है कि मैं ज्ञायक हूँ, भावमन के अंदर विचार चलता है कि मैं ज्ञायक का ध्यान करता हूँ, वो ध्यान करनेवाला ज्ञान नहीं है; वो तो ज्ञेय है। आहाहा! इससे जुदा, मानसिक ज्ञान से भी जुदा, एक नया आत्मिकज्ञान ध्यान में प्रगट होता है। अनंतकाल से नहीं प्रगट हुआ ऐसा ध्यान के काल में अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है, उसकी जाति जुदी है। (पत्र ८३९ में) श्रीमद् राजचन्द्रजी ने उसके अंदर शब्द लिखा है, वो **जात्यांतर** ज्ञान है। जो ज्ञान भवहेतु होता था, भवहेतु! कौनसा ज्ञान? कि इंद्रियज्ञान भवहेतु है। पाँच इंद्रिय और छठ्ठे मन का जो उघाड़ है, वो भवहेतु यानि दुख का हेतु (है)। भव यानि दुख का हेतु, यानि दुख का कारण। भावेन्द्रिय जो प्रगट होती है, पाँच इंद्रिय और छठ्ठा मन वो छहों ही भावमन (सहित) दुख का कारण है, आकुलता को उत्पन्न करनेवाला है। (वो) अपनी चीज नहीं है। उससे जुदा एक जात्यान्तर ज्ञान प्रगट होता है। जो आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानमयी है उसकी जाति का (प्रगट होता है), सामान्य जैसा विशेष। ये भावेन्द्रिय सामान्य का विशेष नहीं है। क्या सामान्य और क्या विशेष? भगवान जाने! आहाहा! ऐसा नहीं करना, मैं जानूँ ऐसा करना। आहाहा!

यात्रा दो प्रकार की है। एक अंदर भगवान का ध्यान करना और लक्ष करना, अनुभव करना, वो यात्रा है। और इस यात्रा के साधक को दूसरे भगवान की यात्रा पर जाने का भाव भी आता है मगर वो यात्रा का भाव करनेवाला आत्मा नहीं है और यात्रा का जाननेवाला भी आत्मा नहीं है। उससे आत्मा जुदा है। जुदा को जान ले जुदा। जुदा को जुदा जान ले। आहाहा! तो तेरा काम बन जाएगा। आज दिवाली है ना। दिवाली का महापर्व है। दीपक प्रगट हो जाए। सम्यग्ज्ञान का दीपक प्रगट हो जाए और अज्ञान अंधकार का, अमावास्या का अभाव हो जाए। आहाहा! ऐसी चीज है।

ये (चंद्रप्रभु) भगवान तो जुदा, मगर भगवान को जाननेवाला ज्ञान भी जुदा, और भगवान के लक्ष से होनेवाला शुभराग, वो भी जुदा। जुदा से आत्मा जुदा है। उस जुदा (आत्मा) को जान ले। जुदा करके आत्मा को जान ले। जुदा ही है। आहाहा! तूने एकत्व कर लिया है इंद्रियज्ञान से। पर को जानना संसार है। आहाहा!

तो प्रश्न उठता है कि केवली भगवान तो पर को जानते हैं? ऐसा नहीं है। केवली भगवान अपने

आत्मा को जानते हैं। अपने आत्मा को जानते-जानते, उसमें दर्पण की भाँति, उसमें लोकालोक प्रतिभासित होता है, तो अपने ज्ञान की पर्याय को जानते-जानते लोकालोक उसमें जनित (जानने में आ) जाता है, तो उपचार से कहा जाता है कि लोकालोक को जानते हैं। सचमुच तो अपने ज्ञान की पर्याय को जानते हैं। आहाहा! ऐसी ३१वीं गाथा अपूर्व चली। उसकी थोड़ी तीन लाइन बाकी रह गई।

ज्ञेय तो द्रव्येन्द्रियों आहाहा! ज्ञान क्या और ज्ञेय क्या? भावक का भाव, निमित्त-नैमित्तिक संबंध वाला जो भावक का भाव (है), वो बात इधर अभी नहीं है। भावक तो द्रव्यकर्म है। उसके उदय के लक्ष से होनेवाला मोह-राग-द्वेष जो भावक का भाव है, वो तो कषाय भाव है। उससे आत्मा जुदा है। मगर इससे भी सूक्ष्म बात! कि ज्ञेय कौन है? कि द्रव्येन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय यानि ये आँख, कान, नाक ऐसा। एक स्पर्श इंद्रिय, एक रस इंद्रिय, एक घ्राण इंद्रिय, एक चक्षु इंद्रिय, एक श्रोत इंद्रिय। ये पाँच इंद्रियाँ हैं, वो जड़-परमाणु की बनी हुई हैं, अनंत परमाणु का पिंड हैं वो। उसमें चेतन का अभाव है।

तो ये पाँच इंद्रियाँ हैं, इसका नाम द्रव्येन्द्रिय है। क्या द्रव्येन्द्रिय और क्या भावेन्द्रिय और क्या अतीन्द्रिय? आहाहा! वो तो पंडित लोग जानें। नहीं, मैं जानूँ। पंडित क्या! आहाहा! पंडित यानि अपना आत्मा वो पंडित है। आत्मा को जाने सो पंडित, पंड (आत्मा) को जाने सो पंडित। पर को जाने सो मूरख, पंडित नहीं। आहाहा! शास्त्रपाठी भी मूर्ख है, ऐसा आचार्य भगवान ने पाठ लिखा है। अपने आत्मा को जानना छोड़ दिया और शास्त्र को प्रसिद्ध किया। ओहोहो! ऐसे भव चला जाता है।

तो आचार्य महाराज फरमाते हैं कि सुन! द्रव्येन्द्रिय ज्ञेय है। ज्ञेय यानि ज्ञान में जानने लायक भिन्न परपदार्थ, उसका नाम ज्ञेय है, परज्ञेय। दूसरा, जो भावेन्द्रिय है ना, भगवान को जाननेवाली, देशनालब्धि सुननेवाली, जो ज्ञान का अंश, वो भावेन्द्रिय है वो ज्ञेय है; उसमें ज्ञान नहीं है। तेरे को ज्ञान की अंदर भ्रांति हो गई, और व्यवहारनय उसको ज्ञान पुकारता है, मगर व्यवहार असत्यार्थ-अभूतार्थ (है)। **(व्यवहार नय) दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है** (समयसार गाथा ५६)। **दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है**। यानि इसका हिंदी क्या? दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है। दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है। समझे? वो जो ज्ञेय (भावेन्द्रिय) है, व्यवहारनय उसको ज्ञान पुकारता है, झूठा कथन करता है। शास्त्र का ज्ञान, ज्ञान नहीं है मगर ज्ञेय है। आहाहा!

तथा इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थों का, जो ज्ञेय पदार्थ इंद्रिय से जानने में आता है ना, वो भी ज्ञेय है। ज्ञेय के तीन भेद - द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और भावेन्द्रिय का विषय, वो सब तीनों ज्ञेय हैं। तीनों में ही ज्ञान नहीं है। हें? अरे! द्रव्येन्द्रिय में तो ज्ञान नहीं है; इसमें (माइक में) तो ज्ञान नहीं है ये तो ठीक है, मगर इसको (माइक को) जाननेवाला जो ज्ञान है, वो ज्ञान नहीं है मगर ज्ञेय है। ज्ञान क्यों नहीं है? कि अपने को नहीं जानता इसलिए अज्ञान है। ज्ञान नहीं (है) तो अज्ञान है, अज्ञान का नाम ज्ञेय है। आहाहा! ज्ञेय का मतलब आत्मा से, ज्ञान से भिन्न है।

वो लड़की सुनती है बराबर। आत्मा हैं ना सब। सब आत्मा, भगवान आत्मा हैं। आचार्य भगवान फरमाते हैं कि हम तो सबको आत्मा देखते हैं। कोई स्त्री-पुरुष नहीं। आहाहा! सब भगवान आत्मा हैं अंदर। देह-देवल में देह से भिन्न अंदर चैतन्यमूर्ति विराजमान है।

तो ज्ञेय तो द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय- खंडज्ञान, और उसके विषयभूत पदार्थ, ये सब, ये ज्ञेय के तीन

प्रकार (हैं)। ज्ञेय यानि जानने लायक। जानने लायक कब? कि आत्मा को जानने के बाद। आत्मा को जानने के बाद वो जानने लायक है, अपनाने लायक नहीं है - ऐसा मालूम सम्यग्ज्ञान में हो जाता है। और **ज्ञायक** जाननेवाला (है)। आहाहा! ये जाननेवाला, जो (परज्ञेय) जानने में आता है, उससे जुदा है। वो जो जाननेवाला, ये दीवाल है ना दीवाल, वो ज्ञेय है, उस ज्ञेय को जाननेवाला ज्ञेय से जुदा है। वो जाननेवाला इधर है और ज्ञेय तो बाहर है। ज्ञेय ज्ञान में नहीं आता है और ज्ञान आत्मा से जुदा नहीं पड़ता है। ज्ञानमयी, उपयोगमयी आत्मा है।

ऐसे ये जो ज्ञायक जाननहार, जाननेवाला, और ज्ञेय; **ज्ञेय का और ज्ञायकस्वरूप स्वयं आत्माका - उन दोनोंका अनुभव,** यानि दोनों की एकता, दो भिन्न-भिन्न होने पर भी **विषयोंकी आसक्तिसे,** ज्ञेयलुब्ध, विषयों में आसक्त हो गया। मैं पर को जानता हूँ, जानता हूँ, जानता हूँ, करता नहीं हूँ, जानता हूँ। लड़का मेरा नहीं है। लड़का मेरा (नहीं है) मगर लड़का है - ऐसा जानता हूँ। ये लकड़ी है, तो लकड़ी को लकड़ी जानता हूँ, मोटर को मोटर जानता हूँ। नहीं, वो अज्ञान है। आहाहा! पर को जानने में संसार खड़ा हो जाता है। आहाहा! अपने को भूलकर पर को जानने में गया तो ज्ञान नहीं रहा, अज्ञान हो गया। आहाहा! अपने को भूलना वही संसार है। अपने को आप भूलकर हैरान हो गया।

उन दोनोंका अनुभव, दोनों की एकता। ज्ञान और ज्ञेय की खिचड़ी बना दी। दाल और चावल जुदा-जुदा हैं। दाल और चावल दो नाम हैं, दो पदार्थ हैं, अलग-अलग हैं, दोनों का लक्षण अलग-अलग है, मगर उसकी खिचड़ी बनाकर, पानी में उबाला तो खिचड़ी हो गई। नाम दाल भी नहीं रहा और चावल भी नहीं रहा, नाम हो गया खिचड़ी। समझे? ये ज्ञायक, ये ज्ञायक आत्मा भगवान और वो राग आदि ज्ञेय, वो राग भी नहीं रहा, ज्ञायक भी नहीं रहा, खिचड़ी बन गई, अज्ञान बन गया। आहाहा! ज्ञायक को भी भूल गया और राग को भी भूल गया और अज्ञान प्रगट हो गया। वो खिचड़ी उसका नाम कहते हैं हमारे देश में। आपके हिन्दी में क्या है? खिचड़ी बोलते हैं कि नहीं? खिचड़ी। आहाहा! खिचड़ी में दो नाम चले गए, गुम हो गए। दाल भी गया और चावल भी गया और खिचड़ी नाम हो गया। यानि जो अपना आत्मा को भूला और देह को अपना माना, खिचड़ी हो गई। ज्ञेय-ज्ञायक का संकरदोष (खड़ा हो गया)। उसे शास्त्रीय भाषा में संकरदोष (बोलते हैं), खिचड़ी। आहाहा! क्या भोजन बनाया आज? खिचड़ी बनाई। आहाहा! किसको जानता हूँ? पर को जानता हूँ, खिचड़ी हो गई। आहाहा!

उन दोनोंका अनुभव, विषयोंकी आसक्तिसे आहाहा! पर को मैं जानता हूँ, उसका नाम विषय है। पर को जानने की जो इच्छा होती है, उसका नाम विषय; और पर को करने की इच्छा होती है, उसका नाम कषाय। विषय और कषाय जीतने से धर्म होता है। आहाहा! **दोनोंका अनुभव, विषयों की आसक्तिसे** आहाहा! आसक्ति हो गई - पर को मैं जानता हूँ, पर को जानता हूँ, पर को जानता हूँ, अभिप्राय झूठा है, बिल्कुल झूठा है। **एकसा था**, एकमेक, खिचड़ी हो गई थी। एकमेक हुआ नहीं था, एकमेक (होने की) भ्रांति हो गई। देह और आत्मा हैं तो जुदा। और तलवार और म्यान, हैं तो जुदा-जुदा। आहाहा! मगर एक जैसे लगते थे। देह और आत्मा हैं तो जुदा-जुदा मगर एक जैसे लगते थे। ऐसे राग और आत्मा, क्रोध और आत्मा, दुख और आत्मा हैं (तो) जुदा-जुदा। आहाहा! मगर एक जैसे (होने

की) एकत्वबुद्धि हो गई। (दोनों) एक जैसे लगने लगे अज्ञान में। अज्ञान से, भिन्न-भिन्न होने पर भी एक लगना उसका नाम अज्ञान है।

एकसा था; जब भेदज्ञानसे भिन्नत्व ज्ञात किया आहाहा! ये मूँग की दाल है और ये चावल है। खिचड़ी-विचड़ी नाम है नहीं। खिचड़ी कहाँ गई? कि अज्ञान में चली गई। मेरे को तो ये मूँग की दाल दिखती है और ये तो चावल दिखता है। दोनों को जुदा-जुदा देखने लगा। आहाहा! खिचड़ी नाम मिट गया। आहाहा! Original (असली) नाम, असल नाम उसका है। वो खिचड़ी तो बनावटी नाम है, तीसरा नाम, तीसरा नाम तो बनावटी हो गया, कृत्रिम। Original तो चावल और दाल जुदा-जुदा हैं। आहाहा!

ऐसे ज्ञान और ज्ञेय, हैं तो जुदा-जुदा, मगर क्रोध जानने में आया, मैं क्रोधी हो गया - वो खिचड़ी हो गई, अज्ञान हो गया, ज्ञान नहीं रहा। क्रोध भिन्न और ज्ञान भिन्न है। क्रोध और ज्ञान एक चीज नहीं है। आत्मा और आस्रव भिन्न-भिन्न हैं। आत्मा और आस्रव एक चीज नहीं है। अभ्यास नहीं (है) क्या करे? आहाहा! सब क्रिया-कांड में लग गए। आहाहा! आत्मा को जानना रह गया तो संसार मिटा नहीं। आत्मा को जाने बिना संसार तीन काल में मिटनेवाला नहीं है।

भेदज्ञानसे भिन्नत्व ज्ञात किया जैसे गेहूँ और कंकर, हैं तो जुदा-जुदा। तो भी जुदा-जुदा होने पर भी जिसको जुदा नहीं मालूम होता है, वो साथ में पीसते हैं तो रोटी में कंकर आता है। और सुघड़ (होशियार) बाई हो तो कंकर निकाल देती है, गेहूँ को ग्रहण करती है और गेहूँ का आटा बनाती है। ऐसे राग और उपयोग भिन्न-भिन्न हैं। जानन-क्रियावाला भगवान, उपयोगमयी आत्मा और जानने में आनेवाले क्रोध-मान-माया-लोभ वो (दोनों) भिन्न हैं। वो मैल है, मलिन भाव है। पाँच महाव्रत का परिणाम, अपवित्र मलिन भाव है। इससे भगवान पवित्र आत्मा जुदा है। आहाहा! भड़क जाता है, जहाँ पाँच महाव्रत को औदयिक भाव कहें, मलिनभाव कहें, वहाँ भड़क जाता है क्योंकि एकता है ना। खिचड़ी बना दी है। आत्मा और आस्रव की जुदाई का मालूम नहीं है।

भेदज्ञानसे भिन्नत्व ज्ञात किया कि स्व और पर की जुदाई को जब जाना अंतर्मुख होकर आत्मा का अनुभाव किया, तो राग से, देह से, इस कुटुंब परिवार से मैं जुदा हूँ। तो निर्मोह दशा हो जाती है, मोह निकल जाता है। थोड़ा राग अस्थिरता का जाने के लिए आता है और आखिर में वो भी चला जाता है, जैसे महावीर प्रभु को राग चला गया और परमात्मा बन गए।

तब वह ज्ञेयज्ञायक-संकरदोष दूर हुआ यानि ज्ञेय और ज्ञायक। ज्ञेय तो क्या कहा? कि इंद्रियज्ञान ज्ञेय, और इंद्रियज्ञान का विषय ज्ञेय, और द्रव्येन्द्रिय भी ज्ञेय, और राग-द्वेष-मोह ज्ञेय, क्रोध-मान-माया-लोभ ज्ञेय। ज्ञेय यानि ज्ञान में जानने में आने लायक। जैसे दर्पण में, दर्पण ज्ञायक की जगह पर रखो, और सामने मोर हो, तोता हो, उसका प्रतिभास होता है, तो वो ज्ञेय नाम है उसका। जो जाननेवाला ज्ञायक है, उसमें वो जनित जाता है उसका नाम ज्ञेय है। ज्ञेय जुदा और ज्ञान जुदा है।

ऐसे **ज्ञेयज्ञायक-संकरदोष दूर हुआ** तो ऐसे आत्मा का जब अनुभव होता है, तब मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र का अभाव होकर **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** (तत्त्वार्थ सूत्र, प्रथम अध्याय, सूत्र १) प्रगट हो जाता है। और **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** कब प्रगट होवे? कि इंद्रियज्ञान से मेरा आत्मा जुदा है। इंद्रियज्ञान से जानना वो मेरा साधन नहीं है। ज्ञान से मैं जानता हूँ,

ज्ञेय से (मैं) जानता नहीं हूँ। भगवान ने ज्ञेय नाम रखा है, आहाहा! वो भूल गया।

व्यवहारनय से ज्ञान कहा तो निश्चय से (उसे) ज्ञान मान लिया, वो उसकी भूल है। वो पंडित की भूल है, त्यागी की भूल है, विद्वान की वो भूल है। और पुण्य से धर्म मानना वो सामान्यजन की भूल है। और विद्वान की भूल क्या? कि शास्त्रज्ञान है तो ज्ञान तो बहुत बढ़ा। अरे! ज्ञान प्रगट ही नहीं हुआ। ये (तो) ज्ञेय का ढेर हुआ। शास्त्रज्ञान बहुत बढ़ा ना, तो ज्ञेय का ढेर हो गया। इसमें ज्ञान का अंश बिल्कुल नहीं है। जो अपने को नहीं जाने उसका नाम ज्ञान कभी है नहीं। सर्वज्ञ भगवान ने ना कहा, संतों ने ना कहा। ऐसे भेदज्ञान करके, पुण्य-पाप के परिणाम से जुदा अपना जो शुद्धात्मा है, अंतर्मुख होकर शुद्धात्मा का श्रद्धान और ज्ञान और आचरण करना, उसका नाम मोक्षमार्ग है। उसका फल अल्पकाल में मोक्ष आता है।

अभी स्तुति बोलो।

मुमुक्षुः- समयसार हमको लागे प्यारा, (२)
लागे प्यारा, हमे लागे प्यारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
समयसार ही प्राण हमारा, (२)
ये जीवन आधार हमारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
समयसार ही सम्यक् दर्शन, (२)
ज्ञान-चारित्र यही सुखकारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित है, (२)
समयसार शुद्धात्म हमारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
चिदानंद चैतन्य प्रभु है, (२)
स्वानुभूति में शोभे अपारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
प्रमत्त नहीं अप्रमत्त नहीं जो, (२)
एक शुद्ध ज्ञायक ही हमारा। (४)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
ज्ञानादि के गुण भेद न जिसमें, (२)
निर्भेद शुद्ध ज्ञायक हमारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
ज्ञानमयी ज्ञायक ही सार है,(२)
शेष सभी व्यवहार असारा। (२)

समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
जाननहार जणाय ज्ञान में, (४)
प्रगटे ज्ञानानंद अपारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
समयसार दर्शावनहार श्री (२)
कुंदकुंद प्रभु को वंदन हमारा। (२)
अमृत प्रभु को वंदन हमारा। (२)
कहान गुरु को वंदन हमारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
कोटि कोटि वंदन कर प्रभु को, (२)
हो जाऊँगा मैं भव से पारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
अमृत पीकर अमर होयें अब, (२)
होय न जग में अवतार हमारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
समयसार जयवन्त रहो नित, (६)
गूँजती रहे जय जय जयकारा। (४)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)
लागे प्यारा, हमें लागे प्यारा। (२)
समयसार हमको लागे प्यारा। (२)